*प्रथम अध्याय*

# विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

# प्रथम अध्याय

# विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

विषय प्रवेश -

हिंदी साहित्य में विष्णु प्रभाकरजी का स्थान बहुत ऊँचा हैं । वे बहुमुखी प्रतिभा लेकर हिंदी साहित्य में अवतीर्ण हुए । वे बरसों से बड़ी लगन से साहित्य साधना कर रहे हैं । बड़ी कुशलता से उन्होंने एक साथ नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, जीवनी, रेखाचित्र तथा बाल साहित्य को आत्मसात किया हैं । मानो साहित्य ही उनका जीवन है । इसी के सहारे एवं बल पर वे अपनी जिंदगी इतमीनान से गुजर रहे हैं । वे साक्षात निष्णात कर्मयोगी हैं । वे अनोखी अदा एवं बड़ी लगन से साहित्य साधना कर रहे हैं । ऐसे सृजनशील साहित्यकार पर हिंदी साहित्य को बड़ा नाज है । लेकिन बड़े अफसोस की बात है कि ऐसे जेष्ठ साहित्यकार की ओर हिंदी के आलोचकों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया । उनके बारे में जो भी कुछ सामग्री प्रकाशित हुई है, एक तो वे छोटे -छोटे लेखों के रूपों में मिलती है, कुछ साहित्य के इतिहास के संदर्भ में लिखी गयी । इस बारे में डा. के. पी. शहा का मत है - ''स्वतंत्र रूप में उनकी विविध साहित्यीक विधाओं का सूक्ष्म अध्ययन या उनकी जीवनी और साहित्य को लेकर अनुसंधान नहीं हुआ है । विष्णु प्रभाकर जैसे बहुमुखी प्रतिभावान और साहित्यिक के प्रति ये अन्याय है ।'' [1]

हिंदी साहित्यकारों में उनका अपना एक अलग विशिष्ट स्थान है । वे लब्ध प्रतिष्ठित कहानीकार, प्रख्यात उपन्यासकार एवं रंगमंचीय एकांकीकार और नाटककार हैं । बाल साहित्यकार के रूप में भी उन्होंने अनगिनत दिलचस्प कहानियाँ तथा एकांकियों को सफलता से लिखा है । ऐसा लगता है उनका साहित्य मानो उनकी जिंदगी का प्रतिबिंब है । साहित्य में दिखायी देनेवाले विष्णुप्रभाकरजी अपनी असली जिंदगी में हूबहू वैसे ही हैं । इन्सानियत, मानवता एवं संवेदनशीलता उनमें कूट - कूट भरी हुई है । वे जैसे कहते है वैसा यकीनन बर्ताव करते हैं । उनका व्यक्तित्व अनोखा हैं, पुरानी पीढी के लोग उन्हें नया समझते हैं, तो नयी पीढीवाले

पुराना । विष्णुजी सन् 1936 में साहित्यिक क्षेत्र में आये । नये कृतिकारों का वे आज भी नेतृत्व दिलोजान से कर रहे हैं । आशा और विश्वास के जो प्रखर स्वर उनमें हैं । वैसे अन्य साहित्यकारोंमें कम ही दिखायी देते हैं ।

"आज अब अटकाव बहुत बढ गया है, प्रेमचंदजी के आदर्शोन्मुख यथार्थ के कुशल वितेरे, गांधीवाद और पुन: निर्माण के ज्योतिवाहक के रूप में विष्णुजी जाने माने जाते हैं ।" [2] वे नये और पुरानी पीढ़ी के बीच खड़े हैं । पते की बात यह कि उनके साहित्य में भी नये तथा पुराने विचारों का सामंजस्य प्रस्थापित हुआ है । उनके दिल में नये के प्रति न घृणा है और न पुराने विचारों को गले से लगाने की कर्मठता । इस पीढ़ीवादी साहित्यिक मान्यता की सिर्फ एकमात्र केजुएल्टी हिंदी में विष्णु प्रभाकर जी हैं । विष्णु प्रभाकर जी के बारे में डा. रघुवीर दयाल वार्ष्णेय जी कहते हैं - "एक साहित्यकार के रूप में भी अपना परिचय उन्होंने साहित्य के विभिन्न अंगो का लेखन कर हिंदी जगत को दिया हैं । द्वितीय महायुद्ध, स्वतंत्रता प्राप्ति, बंगाल का अकाल आदि अनेक समसामयिक विषयों को लेंकर उन्होंने अपने साहित्य का निर्माण किया । लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध ने जिस अकाल हिंसा, बिभित्सता और नाटकीयता को जन्म दिया था । उसका चित्रण बिना किसी घृणात्मकता के लेखन (विष्णु प्रभाकर) ने सफलता से किया है ।" [3] विष्णु प्रभाकरजी के साथ डा. वीरेंद्र सक्सेना जी ने 240 घंटे गुजारे थे । उनके बारे में वे लिखते हैं - "मैंने प्रेमचंदजी को नहीं देखा, मैंने शरच्चंद्र को नहीं देखा लेकिन उन दोनों के साहित्यिक उत्तराधिकारी विष्णुप्रभाकर को देख रहा हूँ ।" [4] गोपाल कृष्ण कौल उन्हें घुम्मकड़ मन के धनी मानते हुए कहते हैं - "आज कल प्रतिष्ठा की होड़ में जुटे लेखकों में यदि किसी लेखक में मित्रभाव और मानवीय समन्वय के गुण सहज रूप में दिखायी पडते हैं । तो वह लेखक निश्चय ही सामान्य से भिन्न हैं, विष्णुजी ऐसे ही लेखक हैं । उनके इस सहज गुणों के कारण उनमें मनुष्य को समग्र दृष्टि से परखने की क्षमता है । चाहे विष्णुजी के नाटक हो या कहानियाँ, उपन्यास हो या निबंध एवं उनकी अन्य रचनाएँ सभी में समग्र दृष्टि से मनुष्य को उद्घाटिक करने का प्रयत्न हैं ।"[5]

डा. महीपसिंह विष्णुजी को लेखकीय स्वायत्तता का प्रेरक बिंदू मानते हैं । " ये लेखकीय प्रयास दीर्घजीवी नहीं हुए परंतु यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इस प्रकार के लेखकीय प्रयासोंके संप्रेरित होने में विष्णुजी माध्यम बने । जब भी कोई पुरस्कार या सम्मान उन्हें मिला - चाहे वह सोवियत लैंड़ नेहरू पुरस्कार हो या

दशरथ मल्ल सिंधवी पुरस्कार - ऐसा लगा जैसे उनके संस्पर्श मात्र से शब्द अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ पुररूजीवित हो उठा है । लगभग ढाई वर्ष पूर्व अहमदाबाद की साहित्यिक संस्था 'शब्दलोक' ने उनका सन्मान किया था । भारतीय लेखक संगठन की वहाँ वार्षिक संगोष्ठी हुई थी । उस सम्मान की गरिमा ने वहाँ उपस्थित अनेक भाषाओंके लेखकों की आस्था को एक बार फिर दृढ किया था कि लेखकीय स्वायत्तता को बनाने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्माण करते है ।''[6] विष्णु प्रभाकरजी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं । हिंदी नाटककारों में उनका विशिष्ट स्थान है । उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है । वे नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, जीवनीकार एवं बालसाहित्यकार हैं । एक संवेदनशील, मानवतावादी सृजनशील साहित्यकार हैं ।

## 1.1 विष्णुप्रभाकर : जन्म तथा बचपन -

विष्णुप्रभाकर जी का जन्म 20 जुलाई, 1912 को मीरापुर, जिला मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश में हुआ । सरकारी कागजों में उनकी जन्मतिथि 21 जून, 1912 दर्ज की गयी है । विष्णु प्रभाकरजी के प्रपिता का नाम चिरंजीलाल है । उनके बड़े भाई का नाम ब्रह्मानंद और छोटे भाई का महेश है । मानो एक ही हार में 'ब्रम्हा, विष्णु, महेश' अवतारित हुए है । निम्नलिखित तालिका देखी जा सकती है ।

वंश-वृक्ष

चिरंजीलाल

| | | |
|---|---|---|
| 1) दुर्गाप्रसाद | 2) द्वारकाप्रसाद | 3) विश्वय्यर सहाय |
| 1) ब्रम्हनंद | 2) विष्णुप्रभाकर | 3) महेश गुप्ता |
| 1) अनीता | 2) अतुल | 3) अमित, अर्चना |

विष्णुप्रभाकरजी के पिताजी धार्मिक वृत्ति के थे । उनकी माताजी जितनी सुंदर थी उतनी ही कर्मठ । वह उर्दू हिंदी लिखना पढ़ना जानती थी । माता पिताजी ने अपने बच्चों पर अच्छे संस्कार किए । उनके जीवन निर्माण में उनके मामा और माँ का योगदान न भूलने योग्य है । उनकी माँ का अरमान था कि बेटा कुछ बने इसलिए उनको अपने से दूर रखा गया । मगर वह विष्णुजी को शिक्षा के लिए मामा के यहाँ नहीं भेजती तो वे आज साहित्यकार नहीं बनते । 12 वर्ष आयु तक उनका बचपन बड़े लाड़ - प्यार में बीता । विष्णु प्रभाकरजी लिखते

हैं -'' माँ कहाँ करती थी कि बचपन में मुझे पढ़ने का बहुत चाव था । इस क्षेत्र में स्वयं वही मेरी आदि गुरू थी वह अपने मायके से दहेज में पुस्तकों का बक्स भी लाई थी । उन्हीं को फाड़-फाड़कर मेरे बालक मन में छापे के अक्षरों के प्रति पूजा की सीमा तक मोह पैदा हो गया था । सोचा करता था - कौन बनाता है इन्हें ? कैसे बनाता हैं ?'' [7]

आज विष्णु प्रभाकरजी जो कुछ भी है उनमें उनके बाल्य जीवन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । बचपन से बारह साल उन्होंने अपनी माँ के साये में बिताए । उनके पिताजी की एक छोटीसी तमाखू की दूकान थी । इस दूकान में तमाखू से भरे टोकरों के साथ साथ एक टोकरा किताबों से भरा रहता था । अक्षर-ज्ञान होने के पश्चात इसी टोकरे के पास बैठकर विष्णुजी ने साहित्य से पहला परिचय प्राप्त किया था । ज्ञान की लालसा दिन-रात बढ़ती गयी । गाँव में शिक्षा का प्रबंध बहुत कम था । माँ ने अरमान से विष्णुजी को मामा के पास 'हिसार' (पहले पंजाब अब हरियाणा में) भेज दिया । वह किस्सा बयान करते समय विष्णुजी लिखते हैं ''मुझे आगे बढ़ने के लिए गाँव छोड़कर जाना पड़ा । आँखों में आँसू भरकर मेरी माँ ने यह कहते हुए हम दोनों को अपने से दूर कर दिया था कि राम, लक्ष्मण को वनवास दे रही हूँ जिससे वे कुछ बन सके ।'' [8]

मामा क्लर्क थे । वे आर्यसमाज के कट्टर अनुयायी थे । उस जमाने में आर्यसमाज देशप्रेमियों के लिए स्फूर्ति एवं प्रेरणास्त्रोत बन गया था । मामा का घर तो किताबों का भंड़ार था उनका प्यासा मन ज्ञानसागर में डुबकियाँ लगाने लगा । प्राचीन साहित्य (वेद, कुराण, पुराण), प्रेमचंद, प्रसाद, रवीन्द्र और शरद्चंद्र महान साहित्यकारों से सबसे यहीं पर परिचय हुआ ।

पहले विष्णुजी अंधविश्वासी थे । लेकिन जिंदगी के हँसीन मोंड़ पर किस्मत ने अंगड़ाई ली उनका मन-परिवर्तन हुआ और वे आर्य समाजी बने । उन दिनों एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई जिसने विष्णु प्रभाकर जी का व्यक्तित्व बनाने में सहायता की यह घटना है सन 1920 की । काँग्रेस की सभा में एक दिन एक मासूम बच्चे ने अपनी झटपट किंतु प्यारी भाषा में कहा था ''मैं खद्दर पहनता हूँ, मेरी प्रार्थना है आप भी खद्दर पहने । हिंदू-मुसलमान मिलकर लड़े अंग्रेजों से'' मेरे चाचा ने मुझ से कहा था, ''देख रे, एक वह लड़का है एक तू है । कैसा अच्छा बोले हे ।'' [9]

इस घटना से उनकी जिंदगी बदल गयी । उसी पल उन्होंने कसम खायी थी कि वे मरते दमतक खद्दर पहनेंगे । आज करीबन सत्तर साल हुए खद्दर उनके जिस्म से अब भी चिपका है । देश को आजादी मिली । कई लोगों ने खद्दर को छोड़ दिया लेकिन देशप्रेमी विष्णु प्रभाकरजी जिनका इरादा पक्का एवं बुलन्द है खद्दर छोड़ नहीं सके । क्योंकि उनके लिए वह खद्दर सिर्फ खद्दर नहीं थी तो स्वर्गवासी चाचा का आदेश भी था । चाचा उन्हें दिलोजान से चाहते थे लेकिन एक दिन चाचा ने विष्णुजी के छोटे भाई को गोद लिया इसका असर यह हुआ कि चाचा का प्यार विष्णुजी के प्रति कम हुआ । विष्णुजी खुद को छोटा समझने लगे ''आज भी यह मनोविज्ञान मेरे मन के किसी कोने में साँप की तरह कुंड़ली मारकर बैठ गया है । मैं अंतर्मुख हो उठा । जैसे कछुआ अपने अंग समेटकर खोल में रहता है, वैसा ही कुछ मेरे साथ हुआ । मुझे लेखक बनाने में इस घटना का बहुत बड़ा हाथ है ।'' [10]

वेदना क्या होती है, व्यथा किसे कहते हैं ? इस वक्त बाल्यावस्था में उनका बालक मन इन शब्दों से परिचित नहीं था । लेकिन अनुमत करने की एक सतत प्रक्रिया होश संभालते शुरू हो गयी थी । वे लिखते हैं ''एक संपन्न परिवार में मेरा बचपन बीता । कैशौर्य की सीमा में यही प्रवेश पाया । सह अस्तित्व और सहिष्णुता का पहला पाठ मैंने यहीं पढ़ा और यहीं मैंने मुक्त आकाश में उड़ने की शक्ति देनेवाले पंखों को कटते भी देखा । यही मेरा परिचय मेरे रोम रोम को ग्रस लेनेवाले हीन भाव से हुआ । संयुक्त परिवार में रहते हुए भी मेरे धर्मप्राण पिता की आयु औरों की तुलना में बहुत कम थी । इसकी वेदना नाना रूपों में मेरी माँ के मन, प्राण को ग्रसती हुई मुझ तक पहुँचते - न - पहुँचते बहुत क्रुर हो उठती थी । और मेरा ताड़ित प्रताड़ित मन अनजाने-अनचाहे हीन भाव का शिकार होता चला जाता था । उस भावना को स्पष्ट करती निर्मम घटनाँए मेरे मन-पटल पर गहरे हो कर रह गई ।''[11]

उस जमाने में जाँति-पाँति के बंधन कड़े थे । छूत-अछूत का बोलबाला था । भंगी, चमार को छू लेने से बार बार स्नान करना पड़ता । विष्णुजी की नाक में दम आता । डा. के. पी. शहा लिखते हैं ''इस तरह की अनेक छोटी, छोटी घटनाओं ने विष्णुप्रभाकर के निर्माण में हाथ बढाया है । अंग्रेज सरकार की जोर

जबरदस्ती, स्वातंत्र्यता की पुकार, भारत - पाकिस्तान विभाजन, आदि अनेक घटनाएँ उनके चरित्र निर्माण में सहायक हुयी ।"[12]

## शिक्षा -

विष्णु प्रभाकरजी बचपन से ही होनहार थे । उनकी बचपन की शिक्षा मीरापुर में हुयी । गाँव में शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं था । इसलिए उनके मामा उन्हें लेकर 'हिसार' गये । नियमीत रूप से दसवीं कक्षा तक आपने शिक्षा प्राप्त की । आर्थिक एवं पारिवारीक परिस्थिति की वजह से वे कॉलेज जा नहीं पाए । सन् 1929 में पंजाब सरकार की फर्म में उन्हें नौकरी मिल गयी । पंजाब विश्वविद्यालय की इंटर और बी. ए. परीक्षा बाहर से बैठकर बड़ी लगन से अभ्यास करके पास की । हिंदी में 'प्रभाकर' तथा संस्कृत में 'विशारद' परीक्षाएँ उत्तीर्ण की ।

उनकी जिंदगी में माँ का प्यार अनन्यसाधारण ग्यारहसाल की आयु में माँ से जुदा होकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें मामा के पास जाना पड़ा । वे माँ के प्रेम से वंचित हो गए । उसके दिल पर गहरी चोट लग गयी । उनका दुर्बल मन माँ के स्नेह के अभाव में तीव्र हीन-भावना का शिकार हो गया । कारण हीन-भावना उनमें उससे पहले ही आकंठ भर गयी थी । जब माँ के प्यार की छाया भी दूर हो गयी तो आंतरिक दुर्बलताओं ने उन्हें ग्रस लिया । विष्णु प्रभाकरजी का स्वभाव और भी अंतर्मुखी होता चला गया । मनुष्य की छाया से वे मानो डरने लगे । बहुत कम उमर में संघर्ष से टकराने की वजह से उनमें परिपक्वता आ गयी । विष्णुजी पढ़ने-लिखने में क्लास में हमेशा आगे रहते । विशेषकर हिंदी, इतिहास, संस्कृत में इसी कारण स्कूल की सभाओं का हर पल ख्याल रखते । 'हिसार' के चन्दूलाल एंग्लो वैदिक हायस्कूल से 1929 में द्वितीय श्रेणी में उन्होंने मॅट्रिक परीक्षा पास की । नौकरी करते हुए पंजाब विश्वद्यालय से 'हिंदी भूषण' प्राज्ञ (संस्कृत विशारद) तक पढ़ाई की । साथ ही साथ 'हिंदी प्रभाकर' तथा बी. ए. की परीक्षाएँ पास की ।

## नौकरी -

हालात की वजह से ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे कॉलेज न जा पाये । उन्हें मजबूरी से नौकरी करनी पड़ी । मामा के गाँव हिसार में कैटल फॉर्म पर 18 रू. माहवार पर पहली नौकरी शुरू की । मई

1929 से जून 1944 तक गवर्नमेंट कैटल फार्म (अब लाइवस्टोक फार्म) पर पहले दफ्तरी फिर क्लर्क के रूप में विष्णुजी काम करते रहे । उन्हें पहले अठारह और कुछ दिन गुजरने के बाद चालीस रूपये तनख्वाह मिलती थी । ब्रिटीश सरकार के प्रति उनके दिल में सख्त नफरत थी । उन्हें यह नौकरी पसन्द नहीं थी । लेकिन दिल पर पत्थर रखकर एवं मजबूरी से यह नौकरी करनी पड़ी । राजनीतिक गतिविधियों से जुड़े रहने के कारण उन्हें पुलिस की निगरानी में रहना पड़ा ।

6 जून, 1940 को सारे पंजाब में छापे पड़े । तलाशियाँ हुयी, सरकारी नौकर होने के बावजूद भी उनके घर की तलाशी ली गयी । विष्णुजी को गिरफ्तार किया गया । लेकिन स्थानीय गुप्तचर विभाग द्वारा सतर्क कर दिये जाने के कारण कुछ भी सामग्री नहीं मिली । लेकिन पुलिस ने उन्हें पंजाब छोड़ देने का मौखिक आदेश दिया । सन् 1942 में फिर हिंदूविश्वद्यालय, बनारस में तोड़-फोड़ करने के संदेह में पूँछताछ की गयी लेकिन यह संदेहनिराधार प्रमाणित हुआ । उन्हीं तारीखों में वे लाहौर में बी. ए. की परीक्षा दे रहे थे । वे विद्रोही बने उन्होंने जून 1944 में 15 वर्ष की नौकरी से त्यागपत्र देकर हमेशा के लिए पंजाब छोड़ दिया । वे दिल्ली गये । अपने संयुक्त परिवार में रहने लगे । इस परिवार पर फ्रेंच टेलीविजन ने एक फिल्म बनाई । लेनिनग्राड़ रेड़िओ से एक वार्ता भी प्रसारित हुई । दिल्ली में अगस्त 1944 से 31 मार्च, 1946 तक उन्होंने 'अखिल भारतीय आयुर्वेद महामंड़ल' में एकाउंटेंट का काम किया । बाद में त्याग-पत्र देकर स्वतंत्र रूप से लेखन - कार्य करने लगे । सितंबर, 1955 से 31 मार्च, 1957 तक सरकार के निमंत्रण पर आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र पर 'नाटक निर्देशक' पद पर काम किया । स्वतंत्र लेखक को उन्होंने कार्यक्रम शुरू किया । ''आखों देखी घटना'' और ''प्रत्यक्ष मुलाकात'' आदि कार्यक्रमोंके द्वारा रेड़ियो को स्टुड़िओ से बाहर निकालने का आपने प्रयास किया । महात्मा गांधी हत्याकांड़ में दो माँह तक फँसे रहे । उन पर लगाया हुआ इल्जाम झूठा प्रमाणित हुआ । सन् 1950 तक अखिल भारतीय काँग्रेस से वे जुडे रहें । उसको सत्ता कामी रूप देखकर वहाँ से भी उन्होंने त्याग दिया । नौकरी छोड़ने के बाद स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य करने लगे ।

विवाह -

26 वर्ष की आयु में उनकी शादी 30 मई, 1938 में सुश्री सुशीलादेवी से हुयी । धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण के कारण उनकी शादी देर से हुयी । विष्णु प्रभाकर जी आंतर जातीय विवाह करना चाहते थे । एक पंजाबी युवती से प्यार करते थे । उनकी माताजी की कर्मठता की वजह से वे पंजाबी युवती से शादी न कर सके । श्रीमती सुशीला प्रभाकर का जन्म स्थान कनरवल जिला हरिद्वार है । सुशीलाजी को पहले से ही गाने-बजाने में दिलचस्पी थी । वह ममतामयी नारी थी । परिवार का बोझ संभालते हुए श्रीमती सुशीला प्रभाकर ने ट्रेनिंग की परीक्षा पास की । वह रेडियो पर वार्तालाप भी देती थी । कैंसर की बिमारी को झेलते हुए भी मुस्कराती थी । स्वभाव से मिलनसार अत्यंत मृदुभाषी, व्यवहार-कुशल नारी थी । विष्णुजी की हर एक रचना को वह बडी लगन से पढती थी । और उन्हें निरन्तर आगे बढने की प्रेरणा देती थी । प्रौढ-शिक्षा के लिए सुशीला प्रभाकर को पुरस्कार भी मिला । 8 जनवरी, 1990 को साठ साल की आयु में वह परलोक सिधारी । उनके दो पुत्र, दो पुत्रियाँ हैं । उनके नाम अनीता, अतुल, अमित और अर्चना है । सभी सुशिक्षित हैं । इनके क्रमशः तीन (एक लड़की, दो लड़के), दो (एक लड़का, एक लड़की), और दो (एक लड़का, एक लड़की) संताने हैं । छः भाइयों के संयुक्त परिवार में रहने के कारण दृष्टिकोण सदा व्यापक रहा । उनकी साहित्य-यात्रा में सबसे बड़ा हाथ उनकी धर्मपत्नी का है । वह प्रेरणा-दायिनी थी। डा. के. पी. शहा लिखते हैं - "अगर विष्णुजी हिंदी के अन्यतम सैनिक है तो उस सैनिक को आगे बढ़ानेवाली देवी है उनकी धर्मपत्नी सुश्री सुशीला जी ।" [13]

## 1.2 प्रभाकर नाम का इतिहास -

विष्णु प्रभाकरजी में प्रभाकर जो शब्द जुडा हुआ है उसका भी एक दिलचस्प इतिहास है । लोगों के सामने यह सवाल पैदा होता है कि उनका नाम प्रभाकर कैसे ? वे जिस काल में पैदा हुए थे वह सुधार का युग था । उस कार्य में माता-पिता अपने बच्चों के नाम सुन्दर एवं आकर्षक रखते थे । देवी देवताओंके और संतपुरूषोंके नाम रखने की परम्परा काफी प्रचलित थी । जनमानस पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव था । विष्णुजी को लोग विष्णुदयाल या विष्णुसिंह नाम से पुकारते । गाँव में प्राइमरी स्कूल में पढ़ने पहूँचे तो मास्टरजी ने रजिस्टर में उनका नाम 'विष्णुदयाल' लिखा । बाद में मामा के साथ वे जब हिसार गये वहाँ प्रसिद्ध आर्यसमाजी स्कूल में उनका नाम दाखिल किया गया । विष्णुजी वैश्य है यह जानकर उन्होंने उनका नाम 'विष्णुगुप्त' रखा । हालात वे

कॉलेज जा सके । सरकारी फॉर्म में उन्हें नौकरी मिली । सम्बधित क्लर्क ने उनका नाम रजिस्टर में लिख दिया 'विष्णुदत्त' । क्योंकि उस कार्यालय में पहले से ही कई गुप्त मौजूद थे । इसलिए 'सर्व्हिस बुक' में 'विष्णुदत्त' नाम दर्ज किया गया । इस बारे में डा. के. पी. शहा लिखते हैं - ''तब से आज तक अधिकृत रूप में 'विष्णुदत्त' ही कहलाते रहे । यह नाम खुद विष्णुजी को भी पसन्द नहीं था । अब विष्णुजी ने अपने साहित्यिक जीवन को आरंभ किया तो उन्होंने 'दत्त' शब्द का प्रयोग नहीं किया । एक दिन संपादक ने कहा कि यह तुम्हारा विष्णुनाम बहुत छोटा है । मगर आपने कोई परीक्षा पास की है तो उस आगे जोड देंगे । विष्णुजी ने 'प्रभाकर' परीक्षा पास की थी । तो संपादक ने उनका नाम 'विष्णु प्रभाकर' कर दिया । आरंभ ये यह 'प्रभाकर' 'कोमाज' में लिखा जाता था । कोमाज उड गए और शब्द 'विष्णु प्रभाकर' प्रचलित हो गया । यह नाम विष्णुजी को भी पसंद आया और उन्होंने उसे हमेशा के लिए कायम किया ।'' [14]

प्रभाकर शब्द को लेकर बहुत मजेदार घटनाएँ आगे घटीत हुयी । कुछ लोग कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' प्रभाकर माचवे, और विष्णु प्रभाकर को एक ही व्यक्ति मानते रहें । खास तौर पर प्रभाकर माचवे और विष्णुप्रभाकर को लेकर अनेक रोचक रंजक घटनाएँ घटीत हुयी । उन दोनों का एक सम्मिलित नाम चल पड़ा । विष्णु प्रभाकर माचवे । संपादक रूपया भेजना चाहते हैं विष्णु प्रभाकर जी को और मनीऑर्डर पहुँच जाती है प्रभाकर माचवेजी के नाम । विष्णु प्रभाकरजी का ड्रामा रेडिओ पर सुनकर श्रोता खुश होते और बधाइयाँ देते हैं प्रभाकर माचवेजी को । इस तरह इस 'प्रभाकर' नाम के कारण कुछ सुखद अनुभव हुए और दु:खद भी । इस नाम के कारण ही 'गांधी हत्या काण्ड' में फँसने से बाल बाल बच गये । 'प्रभाकर' नाम के कारण उन्हें महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण समझा गया । गुप्तचर विभाग के लोग इनका पीछा करते रहें । 6 जून, 1947 में पंजाब में सभी राज विद्रोहियों की तलाशी ली गयी उनमें वे भी थे । यह सारी अपत्ति सिर्फ 'प्रभाकर' नाम के कारण ही आयी । ऐसे ऐतिहासिक नाम को वे कैसे छोड़ सकते ।

## 1.3 साहित्यिक प्रेरणा एवं प्रभाव -

मानवतावादी सृजनशील साहित्यकार विष्णु प्रभाकरजी सबसे निराले हैं । स्वभाव से अबोल तथा एकांत साधन होने की वजह से हमेशा वे अपने में खोये-खोये से रहते हैं । उनकी माँ पढ़ी-लिखी थी । साथ-

ही - साथ कर्मठ थी । पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से था । पिताजी की तमाखू की दूकान में एक टोकरा हमेशा किताबों से भरा रहता । जो जी चाहे उसे विष्णुजी दिलोजान से पढ़ते । मामा के यहाँ तो आर्यसमाज का ग्रंथालय था । अपनी हालात की वजह से कॉलेज जाने का सपना, सपना रह गया । डा. वीरेन्द्र सक्सेना और विष्णु प्रभाकर जी एक साथ सफर कर रहे थे । बातचीत के दौर में उन्होंने उनसे सवाल किया "अपने पर्ववर्ती साहित्यकारों में आप किनसे सबसे अधिक प्रभावित हुए ?" मेरे पूर्ववर्ती साहित्यकार, जिनसे मैं प्रभावित हुआ है - शरदचंद्र, प्रेमचन्द, प्रसाद । फिर मैं जैनेंद्र से प्रभावित रहा । यहाँ तक की वात्स्यायन ने एक चिठ्ठी लिखी जिससें मुझे जैनेंद्र की शैली का आदमी कहा और मुझे इससे मुक्त होने की राय दी । विदेशी साहित्यकारों में मुझे हार्डी, टालस्टय, चेखब, गोर्की, अच्छे लगे । मेरा प्रारंभिक जीवन काफी त्रासद रहा है । इसलिए मेरे साहित्य में भी करूणा पैदा हुयी । और मैं मानता हूँ कि भावुकता के बिना साहित्य नहीं पैदा होता ।" [15]

गांधीजी से भी उन्होंने प्रेरणा ली । साहित्य में उनको गांधीवाद का प्रवक्ता कहा जाता है । गांधीजी ने दुसरे के लिए जीवन जीने की सीख दी । विष्णुजी का विश्वास हे यदि लोग इस पर चल सके तो बहुत सी समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेगी।

सन 1927-28 के आसपास विष्णु प्रभाकरजी का परिचय सभी साहित्य से 'डास्तवायस्की के उपन्यास' 'पवित्र पापी' के द्वारा हुआ । सभी साहित्य के सिवा बंगाल के प्रसिद्ध जाने माने कहानी एवं उपन्यासकार शरदचंद्रजी का विष्णुजी पर गहरा प्रभाव है । ऐसा लगता है शरत की तलाश एवं खोज करते-करते हिंदी साहित्य को संजोग से और एक शरत मिल गया । रोज के जीवन घटित होनेवाली घटनाओं से उन्हें प्रेरणा मिलती । कुछ घटनाएँ खुद के जीवन से, कुछ दोस्तों के जीवन से और कुछ दूसरे व्यक्तियों के प्रकाशित संस्मरण से ली जाती । विष्णुप्रभाकर जी की प्रेरणा का मूल स्त्रोत है जीवन । वे खुली ऑखों से जीवन की ओर अनोखी अदासे देखते हैं । सच तो यह है कि उनका संघर्षमय जीवन ही उनका प्रेरणा स्त्रोत है । 'जियो और जीने दो' यह उनका सिद्धांत है ।

इसी सत्य के बल पर वे जिंदगी के रास्ते पर नयी उमंग से आगे बढ़ रहे हैं । वे जीवन के दर्शक हैं जीवन के आलोचक नहीं । सौम्य साहित्य-साधक हैं । वे मानवता की तलाश में व्यग्र रहते हैं । हमेशा अपने में डूबकर लिखते हैं । मानव ही आपका लक्ष्य है । इस लक्ष्य की वजह से ही विष्णु प्रभाकरजी का पूरा साहित्य मानवता एवं इन्सानियत से अलौकित है । रेडियो भी इनका प्रेरणा स्त्रोत रहा है । रेडियो से प्रेरणा लेकर ही उन्होंने अधिकांश एकांकी लिखे हैं ।

डा. महीप सिंह उन्हें लेखकीय स्वायत्तता का प्रेरक बिंदु मानते हैं । वे कहते हैं - ''विष्णुजी का संपूर्ण जीवन लेखकीय अस्मिता की पहचान है । हमारे सामाजिक जीवन से अपने जीवन कर्म के प्रति समर्पित व्यक्तियों का लोप होता चला जा रहा है । सभी मानवीय कार्यों और लक्ष्यों को उसकी व्यावसायिक सफलता के साथ जोडकर देखना अत्यंत सहज हो गया है । धन और सत्ता प्राप्ति की होड़ सभी नैतिक मूल्यों और आदर्शों को पछाडती चली जा रही है । संभवत: इन्हीं स्थितियों से वे मूल्य उभरेंगे जिनमें मनुष्य की पहचान में उसके कर्म का गौरव प्रधान हो उठेगा । इस समय विष्णुप्रभाकर जैसा व्यक्तित्व वह बिंदू होगा जिसके माध्यम से लेखकीय स्वायत्तता और अस्मिता के खोजी रचनाकार अपने प्रयत्नों को स्फूर्त करेंगे ।'' [16]

विजयेंद्र स्नातक विष्णुप्रभाकरजी को सौम्य साहित्य साधक मानते हैं । उनकी अब विष्णुजी से पहली बार मुलाकात हुयी तो उन्हें ऐसा लगा, '' मैंने पहली बार, जब विष्णुजी को देखा विष्णुको देखना नहीं होता विष्णुके दर्शन होते हैं तो वे लकदक विहीत खादी के शुभ्र वस्त्रों में अत्यंत सहज मुद्रा में मित्रों का पारस्पारिक परिचय करा रहे थे । मुख पर गौर वर्ण की दिप्ति ओर आँखों में चमक होने पर भी प्रभावित या आंतकित करने जैसी भंगीम उनके पास नहीं थी ।''[17]

विजयेंद्र स्नातक को ऐसा लगा कि साक्षात विष्णुजी विष्णुके अवतार हैं । वे उनसे प्रभावित हुए । विष्णुजी के बारे में वे आगे कहते हैं, '' कलम स्वावलंबन का मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में प्रतिनिधित्व करती है, कलम पुरूषार्थ का भी प्रतीक है और स्वावलम्बन का बिम्ब भी । विष्णुजी पुरूषार्थ और स्वावलम्बन के साक्षात मूर्त रूप है । उनकी साठ पुस्तकें अमूर्त अध्ययन और अध्यसाय की मूर्त प्रतिमाएँ हैं । विष्णुजी ने जब

कलम पकड़ी थी तब प्रेमचंद और शरदचंद्र जैसे कथाशिल्पी ही उनके पथ:प्रदर्शक थे । ज्यों- ज्यों पथ प्रशस्त होता गया साहित्य की अन्य विधाएँ भी उनके रचना संसार में समाविष्ट होती गई और आज कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, सस्मरण, निबंध, यात्रावृत्त, बाल साहित्य आदि विधाओंमें उनका प्रदेय लक्षित किया जा सकता है ।"[18]

विष्णुजी संवेदनशील भारतीय लेखक हैं क्योंकि उनमें सरलता, सात्विकता है । उनकी लेखनी हमेशा यथार्थ से जूड़ी रहती है । बड़ी कुशलता से पात्रों का आदर्शमयी चरित्र-चित्रण किया है । " विष्णु प्रभाकर जो का साहित्य मानवीय प्रकृति से घुल मिल गया । व्यक्तित्व की तलाश उसमें असानी से की जा सकती है । व्यक्ति हमेशा अपनी रचना में नहीं तो और कहा होगी ? स्त्रष्टा सदा अपना सृष्टि में ही ओतप्राते रहता है ।"[19]

उनके व्यक्तित्व के बारे में सुदर्शन चोपडा कहते हैं "खादी की नुकीली टोपी, खादी का पाजामा कुर्ता और जवाहर जैकेट । सभी कुछ साफ शफाक और शिकन विहीन । चेहरे पर चमक, रंग गोरा, नक्ष तीखें आवाज बधी हुई और शब्द टिकाकार बोलने का अंदाज । प्रभावशाली चेहरे - मोहरे से नेता अधिक लगते हैं - साहित्यकार कम ।" [20]

विष्णुजी के बारे में गोपाल कृष्ण कौल कहते हैं - " विष्णु प्रभाकर व्यक्ति के नाते अजातशत्रू है । अपनी ओर से वह किसी के अमित्र नहीं । चाहे उनका नुकसान हो या फायदा । स्वतंत्र लेखन के लिए उन्होंने स्थायी सुविधाओं यानी सरकारी नौकरी को जान - बुझकर छोड दिया । आकाशवाणी में उनको आदर के साथ नाटक प्रोड़युसर बनाया गया लेकिन ब्यूरोक्रेसी के माहोल से उबकर उसको भी छोड़ दिया । विरोध और संघर्ष उनके जीवन में कम नहीं रहा लेकिन उनकी जीवन-पंक्ति में कमी - कटुता उभरकर नहीं आयी । उनकी पुरानी निकटता के अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि उनके निकट जो भी आया उनको विष्णुजी में अपनापन मिला । यह उनका परम मानवीय गुण है जो उनकी संघर्षों की जिंदगीं में भी अक्षुण्ण रहा है ।" [21]

विष्णुजी के बारे में शशिप्रभा शास्त्री कहती हैं - " विष्णु प्रभाकर को मैं जानती ही कहा है ? कहते हैं, व्यक्ति अपनी रचनाओं से पहचाना जाता है । कितना कुछ लिखा है उन्होंने कभी सब पढ़ने का मौका ही कहाँ मिला है, जो कुछ पढा है उसे गुनने का समय नहीं मिल पाया है । पत्रों के माध्यम से मापने का प्रयत्न किया है - घुमकड़ी वृत्तिवाले उनके भावुक, उदार सात्विक मन को - पर कितना मुश्कील होता है व्यक्ति के मत को मापना आप कुछ अनुमान लगा पा सक रहे हैं न ?" [22]

विष्णु प्रभाकर जी को कु. इंदीरा अनासकत संत हुए वह कहती हैं, "जीवन में जिसने अनैतिकता से नैतिकता में सौंदर्य बोध ढूंढा । जो न्याय-अन्याय सब की उपेक्षा कर कृतज्ञता एवं सहजता का पालन करता रहा । जिसने उपभोग के ऐश्वर्य को जाना - समझा लेकिन उसकी प्राप्ति के लिए अपने को बन्दक नहीं रखखा जिसने विश्वास का आसन कभी नहीं छोड़ा, गांधी युग की विचारधारा को सहजनेवाला सामान्य इन्सान ...." [23]

साहित्य क्षेत्र में उनके जाने का कारण उनका परिवेश रहा । राजनीती में सक्रीय भाग लेने की उनकी बड़ी इच्छा थी । लेकिन अपनी हालात की वजह से दिल पर पत्थर रखके टूटे हुए दिल से अंग्रेज-सरकारी नौकरी करनी पड़ी । डा. के. पी. शहा लिखते हैं - " जिस अंग्रेज सरकार के अधीन उन्हें मजबूरन नौकरी करनी पड़ी । इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप अंतद्वंद्व का जन्म हुआ अपनी इस व्यथा को प्रकट करने के लिए विष्णुजी को अपनी लेखनी का सहारा लेना पडा ।" [24]

उनके मामा आर्यसमाजी थे । मामा के घर में किताबों का ढेर था । आर्यसमाज का अपना पुस्तकालय भी था । अधुनिक साहित्य में खाँसकर प्रेमचन्द, प्रसाद, बंकीम, रवीन्द्र, गोर्की, टॉलस्टाय, चेखव, थॉमस हार्डी आदि का महान साहित्य इन्होंने दिलचस्पी से पढ लिया । लेखक बनने की अभिलाषा दिल में पैदा हो गयी । सन 1926 में जब वे आठवीं कक्षा में थे तो उनका एक पत्र 'बाल सखा' में छप गया । वे फूले नहीं समाये । आगे चलकर आर्य समाज में भाषण देने के अवसर आये अपने लिखित भाषण छपते भेजते । उनकी भाषा सुंदर रहती । उत्तर प्रदेश हिंदी भाषी प्रदेश होने के कारण वे शुद्ध हिंदी बोलते थे । स्कूल की वादविवाद

प्रतियोगिता में उनकी धाक थी । मन की टीस एवं व्यथा को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें 'साहित्य' रूपी एक साधन मिल गया । शुरू- शुरू में कुछ गद्यगीत लिखें उनमें से कुछ हंस, वीणा, सुधा, नया कर्मवीर सन् 1930-36 तक के अंकों में प्रकाशित हो चुके । कुछ कविताएँ भी लिखी लेकिन उनका विजय, 'आर्यसमाज' तक ही सीमित रहा उन दिनों, 'मिलाप' नया-नया निकल रहा था । 'प्रेमबंधु' नाम से ही कई सालों तक लिखते रहें ।

नवम्बर 1921 में उनकी 'दिवाली के दिन' नामक लिखी कहानी संजोग से 'हिंदी मिलाप' में छप गयी । विष्णु प्रभाकरजी की मंजी हुयी भाषा देखकर उनके बडे भाई ब्रह्मदत्त निहाल हुये । उनका इससे हौसला बढ़ गया । मामा और बडे भाई ने उन्हें निरंतर प्रेरणा दी । यदा - कदा कुछ लिखते तो वे 'हिंदी मिलाप' एवं 'युगांतर' को भेज देते । संपादकों में 'आर्यमित्र' आगरा के संपादक पंडित संतराम बी. ए. उनके प्रेरणा स्त्रोत रहे । सुप्रसिद्ध कहानीकार चंद्रगुप्त विद्यालंकारजी ने उनकी कहानियाँ की प्रशंसा की । विष्णुजी आइनसत् हो गये । सन् 1934 में लाहौर 'अलंकार ' मासिक का प्रकाशन शुरू हुआ था । इसके संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार जी थे । विष्णु प्रभाकर की दो कहानियाँ 'अलंकार' में छापी । विष्णुजी को मनोविज्ञान की ओर ध्यान देने के लिए कहा छपी हुयी कहानियाँ में एक स्नेह की ज्वाला थी । स्नेह और उनकी सबसे पहली कहानी स्त्री पर परशरमचंद्र का प्रभाव था । 'आर्यमित्र ' में विष्णुजी के कुछ लेख प्रकाशित हुये । मुंशी प्रेमचंदजी की 'जागरण ' नामक पत्रिका में 'होली ' विजयपर विष्णुजी का लेख प्रकाशित हुआ । वे कुछ सुधारकर छापना चाहते थे लेकिन उससे पहले मुंशी प्रेमचंद परलोक सिधारे ।

'संघर्ष के बाद ' यह कहानी 'हंस ' में छप गयी । यही से उनके संबंध जैनेंद्र से हुये । साहित्यिक पत्रिका में पहली बार कहानी छपकर आयी देखकर वे निहाल हो गये । जैनेंद्रकुमार ने लिखा है - '' विष्णुजी की रचनाएँ जब भी मैंने पढ़ी सदा भीतर भावोत्कर्म अनुभव किया है । वे हृदय को छुती है कारण उनके लिखने में हृदय का रोग है । विष्णुजी में मान आदर्श का वाद मुझे नहीं प्रतित हुआ । बल्कि आदर्श के प्रति लगन है और यह तत्त्व हिंदी में विशेष नहीं मिलता । ''[25]

डा. के. पी शहा का कहना है - '' खुली आँखो से वे दुनिया को देखते थे । सूक्ष्म तथा संवेदनशील निरीक्षण शक्ति द्वारा वे मनुष्य के अंतरंग में पहुँचने की कोशिश करते है । ''[26] अन्य साहित्यकारों ने भी विष्णुजी को अपनाया । बाबू गुलाबराय, सियाराम शरण गुप्त, भगवती प्रसाद वाजपेयी, अज्ञेय अक्ष, 'वीणा' और 'विश्वामित्र' के संपादकों ने विष्णुजी को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया । उन्होंने लगभग 250 कहानियाँ लिखी । कुछ कहानियाँ छप गयी । कुछ खो गयी । सन् 1938 में उनकी शादी हुयी शादी में सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरीक हुये थे । प्रभाकर माचवेजी ने उनसे गुजारिश की थी कि तुम्हारी कथा में संवाद बहुत अच्छे है, प्रभावशाली है । तुम एकांकी क्यों नहीं लिखते ? इसी प्रेरणा स्वरूप विष्णुजी ने 'हत्या के बाद' एकांकी लिखी । बाद में यह 'कांति' नामसे ''पारिजात'' मासिक में छप गया । 'साहित्य संदेश' में इसे उस साल का सर्वश्रेष्ठ एकांकी माना गया । उनकी एकांकियों की विशेषता के बारे में डा. सत्येंद्र का मत है ''इस (विष्णु प्रभाकर) एकांकीकारों में न तो भावुकता का अतिरेक मिलेगा न बौद्धिक कड़वाहट, न व्यक्तिवादी अहंमन्यता ..... आधुनिक व्यवस्था में मानव के रूप की प्रतिष्ठा के लिए व्यग्र इस लेखक ने एकांकी की कला सुषमा से अभिमंडित कर दिया है ''[27]

विष्णुजी के नाटकों में नवप्रभात, गांधार की भिक्षुणी, ऐतिहासिक, डॉक्टर मनोवैज्ञानिक, युगे - युगे क्रान्ति, टूटते परिवेश, लुहासा और किरण (सामाजिक) होरी गबन उपन्यास पर आधारित चक्रदार है। नवप्रभात नाटक शांति की खोज में लिया गया है । भारत का वैभवशाली इतिहास गांधारी की भिक्षुणी में प्रस्तुत हुआ है । हर युग में क्रांति का बदला हुआ रूप एवं अर्थ युगे युगे क्रांति में प्रकट हुआ है । इस मशीनी युग में आधुनिक औद्योगिक तथा आर्थिक परिवर्तन के कारण टूटने वालो संयुक्त परिवार को 'टूटते परिवेश' में दर्दभरी दास्तान है । चेहरे पर चेहरा लगाकर जनाती की आँख में धुल झाँकनेवाले भ्रष्टाचारी नेताओं पर 'कुहासा और किरण' में कटु प्रहार है । जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण बड़ी कुशलता से हुआ है ।

बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचंद्र चटोपाध्याय की जीवनी 'आवारा मसीहा' हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है । हिंदी साहित्य विष्णु प्रभाकरजी का सदैव ऋणी रहेगा । 'जीवनी साहित्य' की वह एक अभूतपूर्व सृष्टि है । जब तक हिंदी इस जहान में जीवित है तब तक लोग विष्णु प्रभाकरजी को नहीं भूलेंगे । कड़ी

मेहनत एवं बड़ी लगन एवं अपार श्रद्धा के बल पर विष्णु प्रभाकर जी 'आवारा मसीहा' को अपने जीवन की सबसे बडी उपलब्धि मानते हैं । इस पुस्तक पर उनके करीब 20 हजार रूपये व्यय हुये है । इसे उन्होंने छः बार लिखा । तब जाकर उसका अंतिम रूप बन पड़ा है ।

'आवारा मसीहा' के निर्माण के पीछे शरतजी के प्रति अपार श्रद्धा उनके दिल में थी । यह विष्णुजी की लगन एवं साधना की जिंदा मिसाल है । सब से बढ़कर वे जपे हुए साधक है । एक साधक की तरह उन्होंने चौदह वर्ष का वनवास स्वयं लिया और आवारा बनकर इन सभी स्थानों की तीर्थयात्रा की और भूल गए की विष्णु कहाँ है ? कब सोता है ? कब विश्राम करता है ? ऐसी सतत साधना का सुफल हिंदी साहित्य को एक अनमोल कालजयी उमरकृति 'आवारा मसीहा' के रूप में मिली और आज आवारा मसीहा और विष्णु जैसे एक बन गये है । कहानी, एकांकी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं के साथ - साथ विष्णु प्रभाकरजी ने जीवनी संस्मरण, स्केच, रिपीर्ताज और यात्रा - वर्णन को ही बडी सफलता से लिखा है । देश विदेश की संस्कृति को आपने नजदिक से देखा है । संगीत में उन्हें गहरी दिलचस्पी हैं । प्रकृति का मनोहारी रूप उन्हें आकर्षित करता है ।

विष्णु प्रभाकरजी हिंदी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक है । कहानी ? उपन्यास, जीवनी साहित्य, नाटक, एकांकी, निबंध, साहित्य की प्रमुख विधाओं को उन्होंने छुने का प्रयास किया है । जो उनके कारयत्री और भावयत्री प्रतिभा का उत्तुंग व्यक्तित्व का उनका प्रकाशित साहित्य परिचायक है ।

## 1.4 विष्णु प्रभाकरजी का साहित्य -

### कहानी साहित्य -

श्री विष्णु प्रभाकरजी ने सर्वप्रथम कहानियाँ लिखी है उनका प्रथम कहानी संग्रह 'अदि और अंत' सन् 1945 में प्रकाशित हुआ । रहमानबेटा (1947), जिंदगी के थेपडे (1952), संघर्ष के बाद (1953), धरती अब भी घूम रही है । (1959) सफर के साथी (1960), खंडित पूजा (1960), सांचे और कला (1962), मेरी तैतीस कहानियाँ (1967), मेरी प्रिय कहानियाँ (1981), मेरी प्रिय कहानियाँ (1977), पुल

टूटने से पहले (1977), मेरा वतन (1980), खिलौने (1981), इक्यावन कहानियाँ (1983), मेरी कहानियाँ (1984),मेरी कथा यात्रा (1984), एक और कुंती (1985), जिंदगी एक रिहर्सल (1986), एक आसमान के नीचे (1989), आदि कहानी संग्रह आपने लिखे है । विष्णु प्रभाकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं । ''वरिष्ठ लेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने यद्यापि नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार,जीवनीकार, तथा विचारक के रूप में ख्याति अर्जित की है । लेकिन वे स्वयं को कहानीकार ही मानते हैं । '' पूरी विनम्रता के साथ मेरी मान्यता यही है कि मैं जैसा भी हूँ, अच्छा या बुरा, छोटा या बड़ा सबसे पहले कहानीकार हूँ ।''[28]

साहित्य की हर एक विधा को उन्होंने दिलचस्पी से अपनाया । लेकिन वे सब से पहले कहानीकार अपने आप मानते है । उनकी कहानियों की सब से बड़ी विशेषता है कि जीवन के अहंम सवालों से सीधे टकराती हैं । उन समस्याओं का समाधान संकेतित करती है । लेकिन उनमें खोकले आदर्श का प्रदर्शन तनिक भी नजर नहीं आता । अपनी कहानियों के बारे में स्वयं लिखते हैं, ''मैं यथार्थ को स्वीकार करता हूँ । समाज सापेक्ष होकर उससे बचा नहीं जा सकता । आदर्शों का बोझ मुझ पर है लेकिन मै जो कुछ चाहता हूँ उसका रूप दे सकूँ ।''[29] 'धरती अब घूम रही है' प्रभाकरजी की कदाचित सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी है । उसमें उन्होंने बड़ी कुशलता से बच्चों की मासूमियत के जरिए समाज की भ्रष्ट व्यवस्था, देश के अंधे कानून पर कड़ा प्रहार किया है । समकालिन कथा -लेखन में उनकी कहानियाँ का अपना अलग विशिष्ट स्थान हैं । पुष्पपालसिंह लिखते हैं - ''उनकी सुदीर्घ लेखन यात्रा में विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई उनकी कहानियाँ कभी भी संघर्षच्युत नहीं हुई है । सदैव प्रासंगिक बने रहना किसी भी कलाकार की सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है ।''[30]

विष्णु प्रभाकरजी मूल रूप से सुकोमल भावनाओ के चितेरे कथाकार हैं । आपकी कृपा है और 'कौन जीता हारा' यह उनके लघुकथा संग्रह है । भावनाओं का अंकन करते समय दिलोजान से वे भावुकता में डूब जाते हैं । इसलिए उनकी कहानियाँ हृदयस्पर्शी होती है । उनकी कहानियों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है । इसकी वजह यह है कि उनके पास मानव की सुकोमल भावनाओं तक पहुँचने की क्षमता है । जिंदगी का बहुत बडा फलक उन्होंने कहानियों में अनोखी अदा से पेश किया है । जीवन की अनेक समस्याओं को इनमें उभारा हैं । हिंदू-

मुस्लीम समस्या पर अधारित उनकी कहानियाँ हमें आकर्षित करती हैं । ये कहानियाँ देश और जगत के संदर्भ में आज भी प्रासंगिक हैं । हम उन समस्याओं का सामना कर रहे हैं ।

## उपन्यास साहित्य -

प्रभाकरजी एक सफल उपन्यासकार भी हैं । उन्होंने कुल मिलाकर पाँच उपन्यास लिखे हैं। ढलती रात (1951) निशिकांत (1955), तट के बंधन (1955), स्वप्नमयी (1956), दर्पण का व्यक्ति (1968), परछाई (1968), कोई तो (1987), ये कुल मिलाकर सात उपन्यास हैं । लेकिन 'ढलती रात' का संशोधित रूप ही 'निशिकांत' है । 'दर्पण का व्यक्ति' ओर 'परछाई' एक ही उपन्यास के दो नाम हैं । संख्या की दृष्टि से उनके उपन्यास जादा नहीं हैं । केवल पाँच ही हैं । तात्विक से पूरी तरह से 'उपन्यास' मानी जा सकनेवाली पुस्तकें तो तीन ही हैं । विष्णु प्रभाकर शरत्चंद्र से प्रभावित होते हुए भी विविध समस्याओं का केवल भावुकतापूर्वक सिर्फ चित्रण ही नहीं करते और न जैनेंद्र की तरह उन्हें अध्यात्म की ओर घसीटते हैं ।

आधुनिक साहित्यकारों में वे सबसे ज्यादा आधुनिक लगते हैं । वे तो हिंदी के ख्याति प्राप्त कथामानिषी हैं । हिंदू - मुस्लीम समस्या साथ ही साथ जाति - पाति की समस्या को उन्होंने 'निशिकांत' में उठाया है । नारी जीवन से संबधित जो प्रश्न 'निशिकांत 'में अछूते रह गये थे उन्हें विष्णु प्रभाकरजी ने 'तट के बंधन ' इस उपन्यास में ज्यादा स्वच्छंदता एवं तीखेपन से उभारा और उठाया है । उनकी कृति 'स्वप्नमयी' में एक नारी के घर के भीतर और बाहर के कार्यक्षेत्रों से उत्पन्न स्थिति और संघर्ष को लेकर लिखी गयी एक लम्बी एवं दर्दभरी कहानी है । जो आज की नारी की अंतरिक बेचैनी को रेखांकित करती है । 'दर्पण का व्यक्ति' इस उपन्यास में पुरूष प्रधान समाज में नारी की निम्न स्तर स्थिति, विधवा विवाह, सुहाग की विड़म्बना, विवाह -विच्छेद आदि अनेक समस्याओं पर विचार किया गया है । 'कोई तो' इस उपन्यास के बारे में डा. वीरेन्द्र सक्सेना लिखते है - '' संस्कारों की जड़ता और शक्ति की गतिशीलता का यही द्वंद्व लगभग 12 वर्षों बाद प्रकाशित उनके नवीनतम उपन्यास 'कोई तो' में भली भाँति चित्रित हुआ है । 'कोई तो ' इस मायने में उनका सर्वोत्कृष्ठ उपन्यास भी है । क्योंकि इसमें नारी जीवन या स्त्री - पुरूष संबंधों के किसी एक पक्ष का नहीं अपितु अनेक संभावित पक्षों को यथार्थ परक आकलन प्रस्तुत किया जा सका है ।'' [31]

गोविंद का कहना है -" कुल मिलाकर, सामाजिक उपन्यासों की कोटि 'कोई तो' मलि के पत्थर की तरह है । जिस ने निम्न वर्ग की परम्परागत दया का पात्र न बनाकर उसे अपने पैरों पर खडा कर दिया है ।" [32] विष्णु प्रभाकर के गहन मनन - चिंतन का यह फल है । कथानक संपन्नता और पठनीयता उनकी सबसे बड़ी विशेषताएँ है । वे हिंदी के जाने माने सफल उपन्यासकार माने जाते हैं ।

## जीवनी - संस्मरण साहित्य -

हिंदी साहित्य आम कथाओं और जीवनाओं की दृष्टि से 'विपन्न साहित्य' है । विष्णु प्रभाकरजी ने संस्मरण भी बड़ी कड़ी साधना से लिखे हैं । जाने अनजाने (1961), कुछ शब्द कुछ रेखाएँ (1965), आवारा मसीहा (1974), अमर शहीद भगतसिंह (1976), सरदार वल्लभ भाई पटेल (1976), यादों की तीर्थ यात्रा (1981), शुचि स्थिता (संपादित), (1982),मेरे .... मेरे मीत (1983), समान्तर रेखाएँ (1984), हम उनके ऋणी है (1994), मेरे हम सफर (1995), राह चलते चलते (1995), काका कालेलकर (1995), स्वामी दयानंद सरस्वती (1999), शब्द और रेखाएँ (1989), विष्णु प्रभाकर की लघु जीवनियाँ (1990), आदि उनके जीवनी संस्मरण प्रकाशित हुए हैं । हिंदी साहित्य को जीवनियों की दृष्टि से काफी हद तक विपल बनाए रखा ।

अमृतराय तो प्रेमचंदजी के सुपुत्र थे परंतु रामविलास और विष्णु प्रभाकर ने प्रतिष्ठित साहित्यकार होने के बावजूत इस क्रम को तोडा है जीवनियॉ, लिखकर उनके व्यक्तित्व बडे ही हुए है । 'आवारा मसीहा' हिंदी जीवनी साहित्य एक अमर रचना है । डा. वीरेन्द्र सक्सेनाजी ने विष्णुजी के साथ 240 घंटे गुजारे । दोनों एक साथ सफर कर रहे थे क बातचीत के दौर उन्होंने उनसे सवाल किया "आप अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना किसे मानते हैं ? उत्तर में तो स्वयं को एक कहानीकार ही मानता हूँ । लेकिन अन्य लोग 'आवारा मसीहा' को सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं । क्योंकि उसमें मैंने जीवन का सबसे अधिक समय लगाया ।"[33] शरतचंद्र की जीवनी 'आवारा मसीहा' के प्रकाशित होते ही विष्णुप्रभाकरजी अखिल भारतीय जीवनीका के रूप में देश - विदेश में प्रतिष्ठित हो गए । 'आवारा मसीहा' हिंदी का गौरव ग्रंथ है जिसका महत्त्व निर्विवाद है, और जिसने हिंदी के जीवनी साहित्य को एक अभिनव गरिमा प्रदान की है । विजयेंद्र स्नातक कहते हैं " की अक्षय कीर्ति का स्तंभ उनकी अमर 'आवारा

मसीहा' है हिंदी के जीवनी - साहित्य यह मूर्धत्व कोटि की रचना है । कहना न होगा कि जीवनी लेखन का मानदंड है । भारत की अन्य किसी भाषा में भी ऐसी प्राणबल, प्रामाणिक और प्रेरणाप्रद जीवनी उपलब्ध नहीं है ।"[34]

## वैचारिक साहित्य -

विष्णु प्रभाकर ने वैचारिक निबंध भी लिखे उनकी संख्या दो है - उनके नाम जन समाज और संस्कृति - एक समग्र दृष्टि (1981), और क्या खोया और क्या पाया (1982) वे सफर के शौकिन हैं । हिमालय की हँसीन वादियों में उन्हें घूमने का शौक है । उन्होंने सभी तीर्थ स्थानों की यात्राएँ की हैं । समुद्र से भी उन्हें उतना ही प्यार है । लगभग सारा भारत घूम लिया है । वे विदेश में भी दो बार - 1962 और 1976 में वे रूस, गये थे । इसके अतिरिक्त नेपाळ,बर्मा,कम्बोडिया,वियतनाम,सिंगापुर,मलाया और मारिशस आदि स्थानों का भी उन्होंने भ्रमण किया है । उन्होंन यात्रा वृत्त भी दिलचस्पी से लिखे हैं । जमुना गंगा के नैहर में (1964), अभियान और यात्राएँ (संपादित) 1964, हँसते निर्झर दहकती यही (1966), ज्योतिर्पूज हिमालय (1982)इस तरह उन्होंने चार यात्रा वृत्तांत लिखे हैं ।''गंगा की गाथा भारत की गाथा है । भारत की आत्मा के ऐश्वर्य और मनप्राण की इच्छाओं - आकाक्षाओं की गाथा है । गंगा भारत है । भारत गंगा है ।"[35]

प्रकृति परिवेश के साथ उन्हें बचपन से लगाव था । 'आवारा मसीहा' के सिलसिले में ही नहीं अपितु अन्य रचनाओं के दौरान भी उन्होंने देश के सुकर प्रदेशों की अनेक यात्राएँ बराबर जारी रखी हैं । लेखक ने यात्रा वृत्त में अपने धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक सांस्कृतिक, भौगोलिक विचार भी जगह -जगह प्रक्षेपित किये हैं ।

## बाल साहित्य -

विष्णु प्रभाकर ने बाल साहित्य का क्षेत्र व्यापक किया है । बाबू गजनंदन लाल को बच्चे जरूर जानते हैं । बचपन से लेकर बुढापे तक उन्होंने अनेक कारनामें किये । उनके कारनामें सुनकर नन्हे - मुन्हे मासूम बच्चों का हँसते - हँसते बुरा हाल हो जाता है । बच्चों के प्रिय इस गजानंदन बाबू का जन्म विष्णुजी की लेखनी से हुआ है । यह ऐसा भोला भाला और हंसोड चरित्र है कि कई सालों से यह बच्चों का दिल बहला रहा है । हिंदी में बाल साहित्य को नयी दिशा देकर उसे समृद्ध बनाने और बच्चों तक पहूँचाने में जिन लेखकों ने सफलता प्राप्त की

है उन लेखकों में विष्णु प्रभाकरजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उनके बाल साहित्य के बारे में हरिकृष्ण देवसरे कहते हैं " हिंदी के जिन स्वनामधन्य वरिष्ठ लेखकों ने बाल साहित्य रचना को सही अर्थों में समझा है और इसे उचित महत्त्व दिया है, उनमें केवल विष्णुप्रभाकर ही ऐसे है जिन्होंने इस विद्या को आधुनिक जीवन मूल्यों और परिवेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया है ।"[36] विष्णु प्रभाकरजी नव बाल साहित्य के दिशा दर्शक हैं । हिंदी में बाल साहित्य को नयी दिशा देकर उसे समृद्ध बनाने में साथ ही साथ उन्हें बच्चों तक पहुँचाने में विष्णु प्रभाकरजी सिद्ध हस्त है । विष्णुजी ने बच्चों के लिए कथाएँ लिखी हैं । नाटक लिखे हैं और यात्रा कथाएँ भी । इस सभी रचनाओं के पीछे उनकी एक दृष्टि रही है । जो उनके रचनात्मक बाल साहित्य को मौलिक धरातल प्रदान करती है । उनकी दिलचस्पी कथाओं के पात्र बच्चों का दिल बहलाते हैं । उनके बाल साहित्य का क्षेत्र व्यापक है । उन्होंने आज तक कुल मिलाकर ग्यारह बाल नाटक व एकांकी संग्रह, दो जीवनियाँ (बाल), बारह बाल कथा संग्रह लिखे हैं । उनका ब्योरा निम्न प्रकार है -

**बाल नाटक -**

जादू की गाय (1972), बाल एकांकी - मोटे वाला (1955), कुंती के बेटे (1958), रामू की डोली (1959), दादा की कचहरी (1959), अभिनव एकांकी (1968), अभिनव एकांकी (1969), हड़ताल (1972), नूतन बाल एकांकी (1975), ऐसे-ऐसे (1978), बालवर्ष झिंदाबाद (1981), जीवनी - शरतचंद्र (1959), बंकीमचंद्र (1968), शरतचंद्र का बचपन (1990)

कथा साहित्य : जीवन पराग (अज्ञात), सरल पंचतंत्र (1955), जब दीदी भूत बनी (1960), स्वराज की कहानी (1971), घमंड का फल (1973), हीरे की पहचान (1976), मोतियों की खेती (1976), तपोवन की कहाँनिया (1976), पाप का घड़ा (1976), गुडिया खो गई (1977), पहाड चढ़े गजनंदनलाल (1981), गजनंदलाल बच्चों के नाटकों की दिशा में विष्णुजी का सर्वाधिक योगदान है ।

उनके बाल साहित्य कें बारे में हरिकृष्ण देवसरे का मत है "विष्णुजी ने अपने बाल साहित्य में इन विचारों को अभिव्यक्ति दी है ओर स्पष्ट किया है कि बच्चों की वास्तविक माँग क्या है ? वह उपदेश के विरोधी

है, नीति की घुटि नहीं पिलाना चाहते, किन्तु ऐसा बाल साहित्य अवश्य देना चाहते हैं जो बच्चों को तर्कशील, विवेकशील और नये परिवेश को समझने योग्य बनाये ।"[37] विष्णु प्रभाकर दोनों ही है । विष्णुजी बड़ो के प्रति जितने समर्पित है उतने ही बच्चों के प्रति भी है । बाल साहित्य विकास में उनके विचारों ने हमेशा प्रेरणा दी है । विष्णु प्रभाकरजी का साहित्य विविध प्रकार का है ।

## अन्य विविध साहित्य -

विविधा - बापू की बातें (1954), बद्रीनाथ (1955), हजरत उमर (1955), कस्तुरबा गांधी (1955), बजी प्रभू देशपांडे (1977), ऐसे थे सरदार (1957), हा-इ-अल रशीद (1957), हमारे पड़ोसी (1957), मन के जीते जीत (1957), मुरब्बी (1957), लुम्हार की बेटी (1959), शंकराचार्य (1960), यमुना की कहानी (1960), मानव अधिकार (1960), रवींद्रनाथ ठाकुर (1961), पहला सुख निरोगी काया (1963), एक देश एक हृदय (1973), नागरिकता की ओर (अज्ञात), मैं अछूत हूँ (1992), आदि अनेक विषयों पर उन्होंने लिखा हैं । वे सृजनशील साहित्यकार हैं । विष्णु प्रभाकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । साहित्य की हर एक विद्या सब कुछ इन्होंने लिखा है ।

## एकांकी साहित्य -

कई बार यह तय कर पाना मुश्किल होता है । कि विष्णुजी को किस विधा का सिद्धहस्त कलाकार माना जाए । लेकिन एक बात निश्चित है विष्णु प्रभाकरजी का रूझान नाटक की ओर अधिक है । क्योंकिं लंबे समय से वे रंगमंच के साथ जुडे रहे हैं । एक अभिनेता और लेखक के रूप में । लेकिन उन्होंने पूर्ण नाटकों की अपेक्षा अधिक 'एकांकी नाटक' लिखे हैं । एक नाटककार के रूप में इनकी पहचान जो बनी है वह इनके एकांकी नाटकों के कारण ही ज्यादा है । वे एक सजग रचनाकार है । खुली आँखो से आज के सामाजिक और पारिवारिक स्थितियों को देखते हैं । उनका बड़ी कुशलता से चित्रण करते हैं । उनके एकांकियों का संचार उनके नाटकों के संचार की तरह ही सामाजिक परिवेश और ऐतिहासिक तथा पौराणिक गाथाओं पर आधारित है ।

कुछ लोगों का विचार यह है कि विष्णुजी जितने सफल एकांकीकार हैं उतने नाटककार के रूप में वे सफल नहीं हुए । लेकिन कुछ भी हो वे एक सफल एकांकीकार हैं । एकांकीकार के रूपमें विष्णुजी की मात्रा रंगशिल्प की मात्रा से जुड़ी हुई है । उनका पहला एकांकी संग्रह इंसान और अन्य एकांकी (1947) प्रकाशित हुआ । उसके बाद अशोक और अन्य एकांकी (1956), प्रकाश और परछाई (1956), बारह एकांकी (1958), दस बजे रात (1959), ये रेखाएँ ये दायरे (1963), ऊँचा पर्वत गहरा सागर (1966), मेरे प्रिय एकांकी (1970), मेरे श्रेष्ठ एकांकी (1971), तीसरा आदमी (1974), नए एकांकी (1976), हरे हुए लोग (1978), मैं भी मानव हूँ (1982), हटिं की खोज (1983), मैं तुम्हें क्षमा करूँगा (1986), आदि एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए । कुछ एकांकियों में विष्णु प्रभाकरजी ने दृष्य संकेत भी दिये हैं ।

उन्होंने एक रूपक संग्रह लिखा है जिसका नाम स्वाधिनता संग्राम है । उनके अनूदित नाटक एक लिंकन (1962), और विद्रोह (1962), है । (1950) ''रेडियो रूपक में कलात्मक प्रयोग के लिए विष्णुजी नाम सदा स्मरणीय रहेगा । इस संदर्भ में सर्वोदय, स्वाधिनता संग्राम नया कश्मीर, पंचायत आदि बहुत प्रसिद्ध दृध हैं । रेडियो रूपांतर करने में भी विष्णुजी ने अपनी मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है । संक्षेप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी में जिन नाटककारोंने नाटक की सर्वाधिक विधाओं के प्रयोग द्वारा यश अर्जित किया इनमें विष्णुजी प्रमुख है ।'' [38]

विष्णु प्रभाकरजी के ध्वनि नाटकों और ध्वनि रूपकों ने इस एक विधा के रूप में प्रतिष्ठत करने में बडा योगदान दिया है । रेडियो पर ध्वनि नाटकों में एक बात महत्त्वपूर्ण है और वह पीढियों का संघर्ष या अंतर । वे एक सजग रचनाकार हैं वे खुली आँखों से आज के सामाजिक और परिवारिक परिस्थितियों को देखते हैं और बड़ी कुशलता से उनका चित्रण करते हैं ।

निष्कर्ष -

विष्णु प्रभाकर जी ने मौलिक नाटक लिखे हैं । नाटककार के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की है । नाट्यविद्या के प्राय: सभी रूपों में उन्होंने रचना की है । उन्होंने हिंदी नाटक को रंगमंच, रेडिओ और

टेलिविजन पर लोकप्रिय बनाया है । उनके नाटक और एकांकी इस बात के साक्षी है कि उनका मन कथासाहित्य की अपेक्षा नाटक में अधिक रमा है । अंत में हम यह कह सकते है, कि प्रभाकरजी बहुमुखी प्रतिभा लेकर हिंदी साहित्य में अवतरित हुए है ।

## - संदर्भ -


| | | |
|---|---|---|
| 1. | विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा, | पृ 1,2 |
| 2. | सात एकांकी - डा. सरोजनी कुलश्रेष्ठ, | पृ 21 |
| 3. | हिंदी कहानी बदलते प्रतिमान - डा. रघुवर दयाल वार्षीय, | पृ. 105 |
| 4. | आवारा मनुष्य - विष्णुप्रभाकर डा. वीरेन्द्र सक्सेना, | पृ. 15 |
| 5. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (गोपाल कृष्ण कौल का लेख ''घुम्मकड मन के धनी'') | पृ. 92, 93 |
| 6. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (डा. महिप सिंह का लेख -''लेखकीय स्वायत्तता का प्रेरक बिंदु'') | पृ. 1 |
| 7. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (विष्णु प्रभाकर का लेख -''मै, मेरा समय रचना प्रक्रिया'') | पृ. 18 |
| 8. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, | पृ. 20, 21 |
| 9. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (विष्णु प्रभाकर का लेख -''मै, मेरा समय रचना प्रक्रिया'') | पृ. 19 |
| 10. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (मैं इनसे मिला) | पृ. 27 |
| 11. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, (विष्णु प्रभाकर का लेख -''मै, मेरा समय रचना प्रक्रिया'') | पृ. 20 |
| 12. | विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा, | पृ. 20 |
| 13. | विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा, | पृ. 22, 23 |
| 14. | विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा, | पृ. 24 |
| 15. | आवारा मनुष्य - विष्णुप्रभाकर - डा. वीरेन्द्र सक्सेना, | पृ. 32 |
| 16. | विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, | पृ. 9 |

( लेख - ''लेखकीय स्वायत्तता का पेशक बिंदु'')

17. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 10
(विजयेंद्र स्नातक का लेख - ''सौम्य साहित्य साधक'')

18. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 11
(विजयेंद्र स्नातक का लेख - ''सौम्य साहित्य साधक'')

19. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 12
(विजयेंद्र स्नातक का लेख - ''सौम्य साहित्य साधक'')

20. साहित्य संगम (मासिक) - सुदर्शन चोप्रा, अंक 71

21. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 92
(गोपाल कृष्ण कौल का लेख ''घुम्मकड मन के धनी'')

22. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 100
(शशिप्रिया शास्त्री का लेख ''परिचय के धूप - छायी रंग'')

23. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 100
(कु. इंदिरा का लेख - ''विष्णुप्रभाकर - एक व्यक्ति'')

24. विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा, पृ. 26

25. प्रतिनिधी एकांकी - डा. रामचरण महेंद्र, पृ. 74

26. विष्णु प्रभाकर के साहित्य का अनुशीलन - डा. के. पी. शहा - पृ. 30

27. हिंदी एकांकी - डा. सत्येंद्र - पृ. 188

28. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 138
(हेतू भारद्वाज का लेख ''सुधारवाद से भावुक यथार्थवाद तक'')

29. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 139-140
(पुष्प पाल सिंह का लेख ''धरती पर जीवन के इर्द -गिर्द घुमती कहानियाँ'')

30. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 144

31. आवारा मनुष्य : विष्णुप्रभाकर - डा. वीरेन्द्र सक्सेना, पृ. 53

32. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 137
(गोविंद प्रसाद का लेख ''विपवाद की खोखली जड़े : मजबूत पंजे'')

33. आवारा मनुष्य - विष्णुप्रभाकर - डा. वीरेन्द्र सक्सेना, पृ. 33

34. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ.15
(विजयेंद्र स्नातक का लेख - ''सौम्य साहित्य साधक'')

35. ज्योतिपुंज हिमालय - विष्णुप्रभाकर, पृ. 169

36. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ.214
(हरिकृष्ण देवसरे का लेख - ''नव बाल साहित्य के दिशा दर्शक'')

37. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ. 216
(हरिकृष्ण देवसरे का लेख - ''नव बाल साहित्य के दिशा दर्शक'')

38. विष्णु प्रभाकर : व्यक्ति और साहित्य - सं. डा. महिप सिंह, पृ.14